भूमि संघर्ष की कार्यनीति

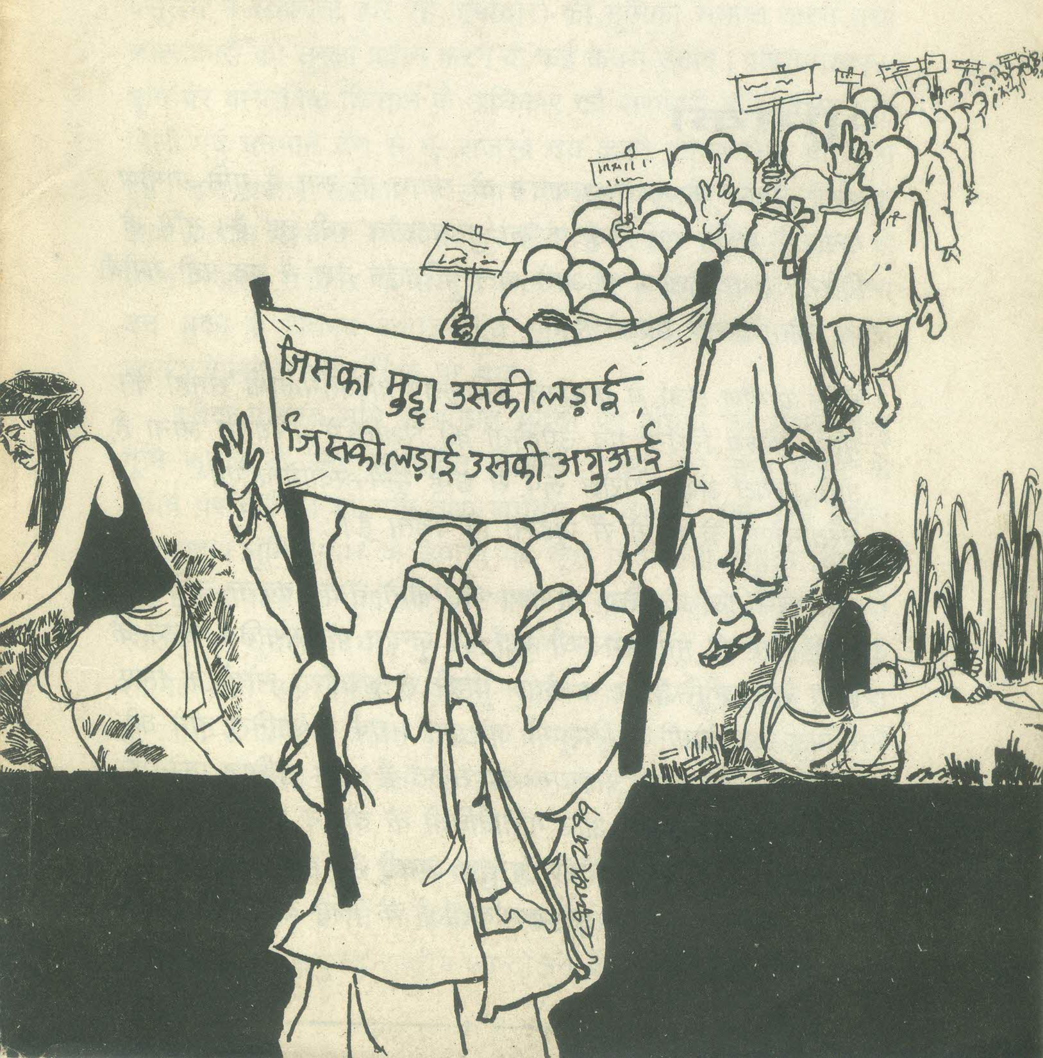

भूमिका

हमारे समाज के मुख्य उत्पादन के साधन के रूप में भूमि ग्रामीण भारत में शक्ति एवं नियंत्रण का मुख्य स्रोत बनी हुई है। भूमि के वितरण तथा वितरण में आने वाले परिवर्तन देश में बढ़ रही गरीबी पर सीधा प्रभाव डालते हैं।

चूँकि ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत अधिकतर परिवर्तनकामी समूहों का मुख्य उद्देश्य निर्धनों एवं उपेक्षितों की स्थिति में परिवर्तन लाना है, अतः प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उन्हें भूमि–स्वामित्व एवं हस्तान्तरण के प्रश्नों से जूझना ही पड़ता है।

सभी स्थितियों के लिए सामान्य कार्यनीति तैयार करना उचित नहीं, फिर भी भूमि सम्बन्धी मुद्दों पर जनता को संगठित करने के लिए समान्य सिद्धान्त न केवल पहले से संघर्षरत लोगों के लिए अपितु उन लोगों के लिए भी जो इस संघर्ष में शामिल होने की प्रक्रिया में है, काफी सहायक हो सकते हैं। यह संक्षिप्त पुस्तिका विभिन्न कार्यशालाओं और गतिविधियों के दौरान प्राप्त होने वाले अनुभवों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करती है। हमें आशा है कि इन सरोकारों से जुड़े हुए कार्यकर्ताओं के लिए यह पुस्तिका सहायक सिद्ध होगी।

पृष्ठभूमि

भारत में भूमि सम्बन्धी मुद्दों पर संघर्ष का एक लम्बा इतिहास है। स्वतंत्रतापूर्व भूमि सम्बन्धी संघर्षों का केन्द्र बिन्दु वास्तविक किसान के भूमि पर अधिकार को मान्यता दिलाने एवं मनमाने ढंग से भू–राजस्व (मालगुज़ारी) तय करने के विरूद्ध संघर्ष था। साथ ही संघर्ष के दौरान सामंतों–जमीदारों तथा उन्हें सहायता दे रही अंग्रेज सरकार के रूप में शत्रु की पहचान स्पष्ट रूप से कर ली गयी थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद सरकार ने बिचौलियों (लगान वसूलने में सहायता कर रहे जमींदार) की भूमिका समाप्त करने तथा काश्तकारों को सुरक्षा प्रदान करने के कई कदम उठाए। परिणामस्वरूप भूमि पर वास्तविक किसान के अधिकार को सरकारी तौर पर मान्यता मिली एवं मनमाने ढंग से भू–राजस्व तय करने की समस्या भी खत्म हुई। इस प्रकार सरकार ने लगान सम्बन्धी मामलों में किसानों के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित कर लिए हैं। साथ ही भू–राजस्व से प्राप्त राजस्व सरकार के सम्पूर्ण राजस्व का अपेक्षाकृत छोटा हिस्सा बन चुका है अतएव स्वतंत्रतापूर्व भूमि सम्बन्धी संघर्षों का महत्व स्वतंत्रतोपरान्त अप्रासंगिक हो गया।

इसके पश्चात भूमि सम्बन्धित मुददों पर संघर्षों का मुख्य बिन्दु भूमि सुधार के लिए प्रस्तावित विभिन्न उपायों को लागू करने के संघर्ष पर केन्द्रित हो गया तथा लगभग दो दशकों तक उसी प्रकार बना रहा। भूमि सुधार के उपायों पर कुछ ज्यादा ही विद्वता दिखाने एवं इन उपायों के तार्किक परिणामों ने ग्रामीण क्षेत्रों में शोषण के स्वरूप को धुंधला दिया। भू–स्वामी वर्ग में किसानों के नए हिस्से के शामिल होने एवं जमींदारों की भू–राजस्व वसूली भूमिका के समाप्त हो जाने से ग्रामीण शक्ति संरचना में मूलभूत परिवर्तन आया जिनमें से कई परिवर्तन स्वतंत्रता के लगभग दो दशकों बाद तक अदृश्य रहे।

इन घटनाओं एवं इनके साथ ही विभिन्न राज्यों में भूमि सुधार उपायों को लागू करने में क्षेत्रीय असमताओं ने, ग्रामीण निर्धन वर्गों द्वारा किये गये संयुक्त राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास को रोक दिया।

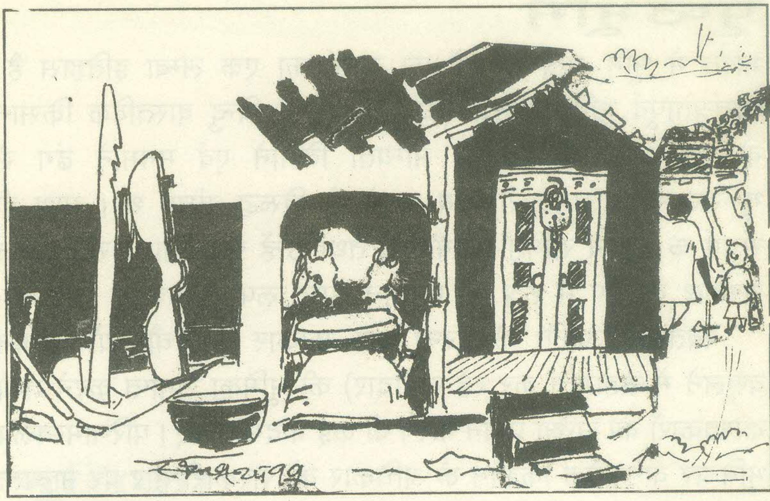

इस नई स्थिति ने भूमि के असमान वितरण की पृष्ठभूमि में विभिन्न क्षेत्रों में कई नए मुद्दे खड़े कर दिए।

पिछले कुछ दशकों में उभरे हुए भूमि से सम्बन्धित मुद्दो पर ग्रामीण निर्धनों को संगठित करने के कई प्रयास हुए हैं एवं स्थानीय स्तरों पर संघर्षों की शुरूआत हुई है। कार्यकर्ता ग्रामीण निर्धनों को प्रभावित करने वाले नए मुद्दों की पहचान करने तथा उनसे निपटने के लिए उपयुक्त कार्यनीति तैयार करने का प्रयास कर रहे हैं।

इन मुद्दों को निम्न श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:

(अ) भूमि का पुनर्वितरण

(ब) भूमि हस्तान्तरण

(स) हस्तान्तरित भूमि का प्रत्यावर्तन (दाखि़ल–ख़ारिज)

(अ) भूमि का पुनर्वितरण

देश के छोटे एवं सीमान्त किसान तथा खेतिहर मजदूर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से इस समस्या का सामना कर रहे हैं। 1950–1960 के दौरान हुए भूमि सुधार के प्रथम चरण में विभिन्न राज्यों में जमींदारी उन्मूलन अधिनियम लागू किए गए जिससे बिचौलियों की भूमिका समाप्त हो गयी। इस कानून से मुख्य रूप से उन बड़े किसानों को ही लाभ हुआ जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान

किसानों के संघर्षों में हिस्सा लिया था। राजनैतिक संकट से बचने एवं प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए बिचौलियों को करोड़ों रूपये (बिचौलियों को हर्जाने के तौर पर नकद या बॉण्ड के रूप में 670 करोड़ रूपये देने का अनुमान लगाया गया था) दिए गए।

साथ ही, चूँकि काश्तकारों को भूमि पर अधिकार दिलाने के लिए उठाए गए कदम से छोटे, आंशिक एवं सीमान्त किसानों को लाभ होना था; अतः सरकारी तंत्र ने इसमें अधिक रूचि नहीं दिखायी। कानून में मौजूद कमज़ोरियों के कारण कई प्रकार की समस्याएं पैदा हुई तथा पूरी प्रक्रिया के दौरान संभावी लाभाधिकारियों के आधे हिस्से को भी इससे लाभ नहीं हुआ।

1972 में किसानों के सीमान्त वर्गों के लिए भूमि सीमा अधिनियम के रूप में नई आशा जगी। हालॉकि सरकारी दस्तावेजों में प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय से ही भूमि सीमा (अधिनियम) की चर्चा की गयी परन्तु 1972 में मुख्यमंत्रियों की कांफ्रेंस के राष्ट्रीय दिशा–निर्देशन की स्वीकृति के बाद ही इसे लागू किया जा सका। इसके साथ ही निर्धन किसानों एवं भूमिहीन मज़दूरों के संघर्ष का एक नया दौर शुरू हुआ। शुरू में फ़ाज़िल भूमि की पहचान करने तथा सरकार द्वारा उस भूमि के अभिग्रहण एवं उसके पश्चात ग्रामीण निर्धनों में उस भूमि के उचित पुनर्वितरण के लिए संघर्ष शुरू हुआ। आठवें दशक में स्थानीय स्तर पर इस स्वरूप के संघर्ष देश के विभिन्न भागों में हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि ग्रामीण निर्धनों को संगठित करने में भूमि के पुनर्वितरण का मुद्दा काफी महत्वपूर्ण रहा है।

(ब) भूमि हस्तान्तरण निवारण

पिछले दशकों में भूमि स्वामित्व एवं भूमि पर नियंत्रण के कमजोर होने ने व्यापक रूप धारण कर लिया है। भूमि हस्तान्तरण के मुख्य कारण कर्ज लेना, पूँजीवादी खेती, विकास परियोजनाएं एवं भूमि रिकार्ड रखने में अनियमित्ताऐं हैं। इसमें पूंजीवादी खेती एवं कर्ज लेना भूमि हस्तान्तरण को निश्चित किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं जबकि विकास परियोजनाएँ एवं भूमि रिकार्ड रखने में बरती

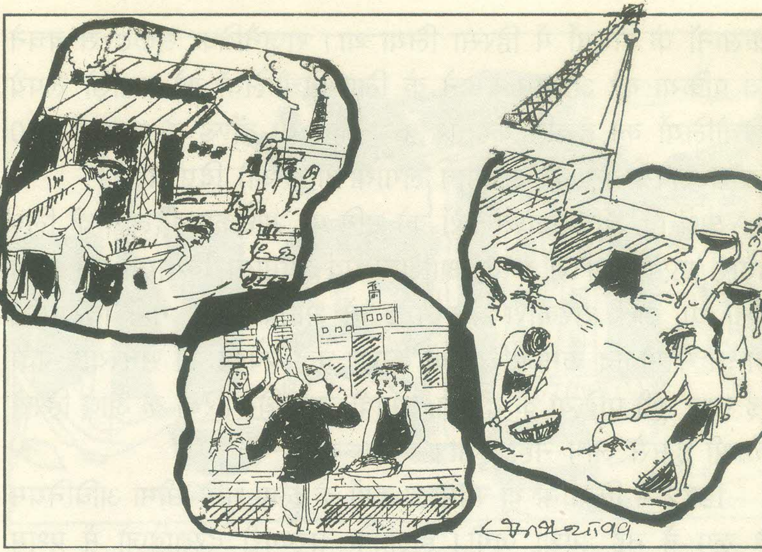

जाने वाली अनियमितताएं प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालती है। दरअसल स्वतंत्रतोपरान्त भूमि हस्तान्तरण का सबसे गहरा खतरा भूमि अभिग्रहण से पैदा हुआ जिसके अनुसार भूमि जनोपयोगी उद्देश्यों के लिए ली जाती है।

कर्जदारी की समस्या को देखते हुए पूरे देश में विभिन्न समूह ग्रामीण निर्धनों को संगठित कर रहे हैं। कुछ समूह जनता की अपनी मितव्ययी संस्थाएँ कायम करने की कोशिश कर रहे हैं और कुछ संस्थाएँ 1976 में सरकार की ग्रामीण ऋण स्थगन घोषणा से लाभ उठाने के उद्देश्य से जनता को संगठित करने का प्रयास कर रहे हैं। इनके अलावा कुछ ऐसी संस्थाएँ भी हैं जो बैंकों द्वारा घोषित कुछ योजनाओं से समय–समय पर लाभ उठाने का प्रयास कर रही हैं।

भूमि रिकार्ड में अनियमितताओं की समस्या का सामना ग्रामीणों के बीच कार्यरत् कार्यकर्ताओं को रोज़मर्रा के कार्यों के दौरान करना होता है तथा स्थानीय स्तर पर विभिन्न तरीकों से उनके विरूद्ध संघर्ष करना पड़ता है। दरअसल चकबंदी के दौरान (जिसका उद्देश्य भूमि सम्बन्धी रिकार्ड का नवीनीकरण करना है) ग्रामीण निर्धनों को काफी समस्याओं का सामना करना पड़ा जिसमें निर्धनों की अच्छे किस्म की भूमि स्थानीय प्रभावशाली लोगों को मिल जाना एक आम बात हो

चुकी है। अधिकतर मौकों पर चकबन्दी से विभिन्न क्षेत्रों में काफी झगड़े हुए एवं सामाजिक तनाव उत्पन्न हुआ।

विकास परियोजनाओं से होने वाले भूमि हस्तान्तरण की स्थिति में परिस्थतियॉ काफी भिन्न होती हैं। आरम्भिक दौर में प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान देश की कथित उन्नति के उत्साह के कारण यह समस्या उभर कर सामने नहीं आ सकी परन्तु बाद के दिनों में यह स्पष्ट हो गया कि उन्नति के लिए किसी न किसी को उसकी कीमत चुकानी होगी, किन्तु कीमत चुकाने के बाद उन्नति का कोई लाभ भी उन्हें मिले, इसकी कोई गारण्टी नहीं। इस पृष्ठभूमि में विभिन्न स्थानों पर, जहॉ विकास परियोजनाएँ शूरू हुइ अथवा की जा रही हैं, काफी असन्तोष व्याप्त हुआ।

इसका एक उदाहरण भूमि अधिग्रहण एक्ट है। यह एक्ट 1884 में अंग्रेज सरकार ने कानूनी परिधि में रहकर मनमाने ढंग से भूमि पर कब्जा करने के उद्देश्य से लागू किया गया था। तत्पश्चात अब तक इस एक्ट को और भी बल देने के उद्देश्य से इसे 16 बार रूपान्तरित एवं संशोधित किया गया है। स्वतन्त्रतोपरान्त भी इस एक्ट में कम से कम 6 संशोधन हो चुके हैं। दूसरी ओर इस एक्ट के प्रभाव से विस्थापित होने वाले लोगों के पुनर्वास के लिए अब तक कोई भी नियमन अथवा एक्ट नहीं बनाया गया। साथ ही इस कानून के अन्तर्गत होने वाले भूमि अभिग्रहण के विरूद्ध जन प्रतिरोध दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। वर्षो से तैयार की जा रही ''विकास मानसिकता'' के कारण अपनी भूमि छीने जाने के विरूद्ध एवं सम्मान से जीने के अधिकार के लिए संघर्ष को विकास विरोधी गतिविधियों का नाम दे दिया जाता है।

यद्यपि काफी समय तक विकास योजनाओं से विस्थापित हुए लोगों के अधिकतर संघर्षो में बिखराव बना रहा तथापि इन स्थानीय एवं बिखरे हुए संघर्षो की एक महत्वपूर्ण सफलता यह रही कि इनके द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारी प्रगति के अर्थ एवं दिशा के प्रति कुछ मूलभूत प्रश्न उठ खडे हुए। जनता के इन बिखरे हुए संघर्षो को प्रगति एवं सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के आधार पर ससंबद्ध मांगों

का प्रारूप देकर एक साथ लाने एवं संघर्ष को आगे बढ़ाने के कई प्रयास चल रहे हैं।

मशीनीकरण एवं पूंजीवादी खेती की प्रक्रिया के निरन्तर बढ़ने से विभिन्न क्षेत्रों में अनुपात में भूमिहीनता की समस्या भी निरन्तर बढ़ रही है। बीज, खाद, पेस्टीसाइड, सिंचाई इत्यादि में आने वाले खर्चों में लगातार बढ़ोतरी होने से प्रतिवर्ष हजारों किसान भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की श्रेणी में आते जा रहे हैं। कृषि उत्पादन में बढ़ती हुई लागत के कारण कम भूमि रखना लगभग असंभव होता जा रहा है। परिणामस्वरूप यह देखने में आ रहा है कि हरित क्रान्ति क्षेत्र में छोटे किसान ट्रेक्टर, ट्यूबवैल एवं पूंजी निवेश में समर्थ बड़े ज़मींदारों को अपनी जमीन पट्टे पर देते हैं। इसका अंतिम परिणाम यह होता है कि उन्हें अपनी जमीन फिर कभी वापस नहीं मिल पाती।

हालांकि इन आक्रमणों के विरूद्ध छोटे एवं सीमान्त किसानों को संगठित करने के अधिक प्रयास नहीं हुए हैं, फिर भी कुछ समूह छोटे किसानों को इस प्रकार के फंदों से बचाने के लिए उनके बीच आर्गेनिक कृषि को बढ़ावा देने का यदा–कदा प्रयास कर रहे हैं। चूंकि सरकार छोटे एवं सीमान्त किसानों को सहायता देने के उद्देश्य से उन्हें न्यूनतम ब्याज दर पर ऋण एवं रियायती दामों पर मशीनें, खाद एवं पेस्टीसाइड दिलाकर उन्हें पूंजीवादी खेती के दायरे में लाने का प्रयास कर रही है, इसीलिए भूमि–हस्तान्तरण की समस्या से जूझ रहे समूहों के समक्ष एक गम्भीर असामंजस्य की स्थिति पैदा हो जाती है क्योंकि छोटे किसानों को शिक्षित करने के हर प्रयास को सरकार के "अधिक अन्न उपजाओ" के नारे के साथ स्पर्द्धा करनी होती है।

(स) भूमि हस्तान्तरण का प्रत्यावर्तन (दाख़िल-ख़ारिज)

यह समस्या देश के आदिवासी क्षेत्रों में काफी गम्भीर है। ऐतिहासिक रूप से आदिवासी भूमि हमेशा अहस्तान्तरणीय रही है। अंग्रेजी राज्य में भी, जबकि भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व की योजना आरम्भ हुई, तब भी सरकार ने आदिवासी भूमि के हस्तान्तरण को रोकने के उद्देश्य से कुछ प्रतिबंध लगाए थे। स्वतन्त्रतोपरान्त भी सरकार ने

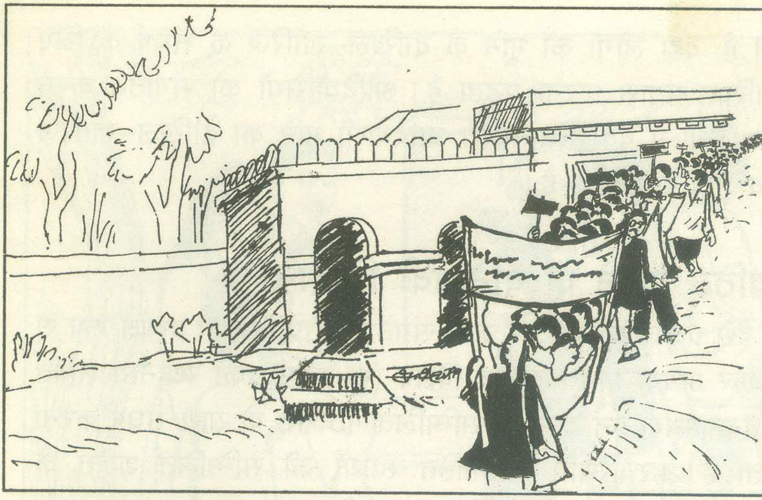

आदिवासी भूमि के हस्तान्तरण को रोकने के लिए कानूनी सुरक्षा का प्रबन्ध किया है। अधिकतर राज्यों में इस प्रकार की कानूनी सुरक्षा उपलब्ध है। इन तमाम उपायों के बावजूद भी आदिवासी भूमि का हस्तान्तरण रोका नहीं जा सका है। आज भी कानून के विरूद्ध आदिवासी भूमि गैर–आदिवासियों को हस्तान्तरित की जा रही है। यह समस्या आदिवासी क्षेत्रों में आजकल और भी गम्भीर रूप धारण कर चुकी है। अपने पूर्वजों द्वारा इस्तेमाल योग्य बनायी गई भूमि पर अपने अधिकार की सुरक्षा हेतु आदिवासियों ने कई बार स्थानीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर संघर्ष छेड़े हैं। इस प्रकार आदिवासियों को न केवल अपनी मौजूदा भूमि पर अपने अधिकार की सुरक्षा करनी है बल्कि पूर्व हस्तान्तरित भूमि के दाख़िल–ख़ारिज के लिए भी संघर्ष करना है। प्रायः यह संघर्ष कानूनी प्रावधानों की सहायता भी हासिल कर लेते हैं, परन्तु कुछ निहित स्वार्थो के द्वारा रिकार्डो में गड़बड़ी पैदा कर देने के कारण यह सहायता प्रभावशाली नहीं होती।

बंधुआ मजदूरों के सम्बन्ध में भी हस्तान्तरित भूमि का दाख़िल–ख़ारिज एक अहम मुद्दा बन चुका है। प्रायः भूमि कानून के तहत (विशेषकर बंधुआ मजदूर उन्मूलन एक्ट 1976 के तहत) बंधुआ मजदूरों की मुक्ति के बावजूद बंधुआ भूमि मुक्त नहीं की जाती। कई स्थानों पर जहां बंधुआ मजदूर विमुक्ति के फालो–अप के प्रयास किए

जाते हैं, वहां लोगों को भूमि के दाख़िल–ख़ारिज के संघर्ष के लिए अतिरिक्त प्रयास करना पड़ता है। आदिवासियों को संगठित करने की प्रक्रिया में पूर्व हस्तान्तरित आदिवासी भूमि का दाख़िल–ख़ारिज मुख्य मुद्दा बन जाता है।

संगठित करने के बुनियादी सिद्धान्त

इस प्रकार के मुद्दों पर जन–संगठन की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से सरकार अथवा किसी व्यक्ति विशेष (भू–स्वामी) की स्थानीय शक्ति संरचना अथवा इन दोनों के सम्मिलित गठजोड़ के साथ संघर्ष करना पड़ता है। हर स्थिति में, निहित स्वार्थों की सम्मिलित शक्ति के गठजोड़ के प्रत्याक्रमण के विरूद्ध अपनी सुरक्षा का एकमात्र साधन एकजुटता तथा विस्तृत एवं मजबूत संगठन है।

इन मुद्दों एवं उनसे उत्पन्न होने वाले खतरों को देखते हुए संगठित करने के विभिन्न तरीकों की आवश्यकता होगी तथापि संघर्षो से प्राप्त होने वाले अनुभवों तथा अनुभवी साथियों के साथ हुए विचार–विमर्श के दौरान ऐसा महसूस किया गया कि जन–संगठनों एवं संघर्षो को शक्तिशाली बनाने के कुछ सामान्य सिद्धान्त हैं। यह सिद्धांत निम्न रूप में रखे जा सकते हैं:

जनसमूहों के साथ निरन्तर संपर्क एवं विचार-विमर्श

इसके लिए नियमित सम्पर्क, नियमित जानकारी देना एवं निर्णय लेने में नियमित परामर्श की आवश्यकता है।

निरंतर सीखने-सिखाने की प्रक्रिया

लोगों के बीच उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति एवं राजनैतिक सम्बद्धता के प्रति समझ में सुधार लाना।

संगठन द्वारा उठाए गए हर मुद्दे के प्रति समग्र दृष्टि एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए अधिक से अधिक जानकारी इकट्ठा करना।

संगठन की आवश्यकताओं एवं उनके परिणामों का मूल्यांकन करना एवं उन्हें ठीक तरह से समझना।

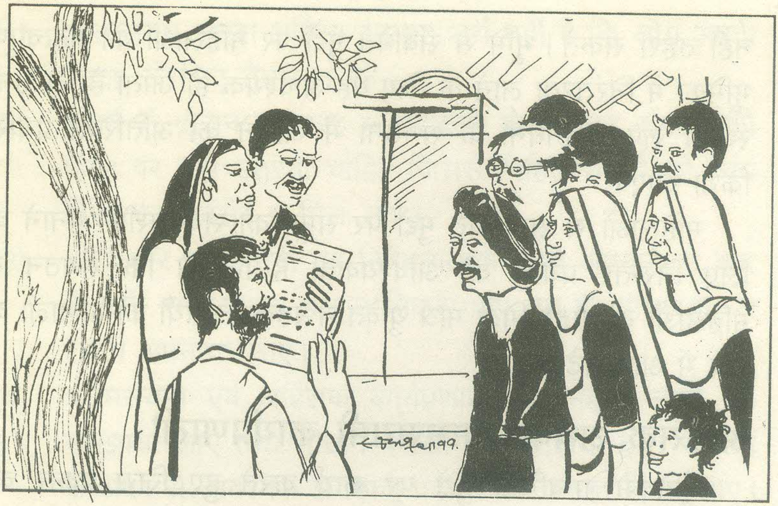

साझा नेतृत्व को बढ़ावा देना

एक सहभागी एवं शक्तिशाली संगठन तैयार करने की प्रक्रिया में यह पक्ष अत्यन्त आवश्यक परन्तु उतना ही कठिन पक्ष ठहराया गया है। ऐसा माना गया है कि साझा नेतृत्व के लिए शुरू से ही प्रयास किया जाना चाहिए। अनुभव बताते हैं कि लगातार शिक्षण एवं उसके प्रयोग के स्व–निर्मित उपाय इस उद्देश्य की प्राप्ति में अत्यन्त सहायक हो सकते हैं।

महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देना

प्रचलित धारणा के विपरीत कुछ विशेष कार्यों के लिए ही महिलाओं की भागीदारी बनाए रखने के बजाए उन्हें स्थायी रूप से संगठन का हिस्सा बनाया जाए।

अक्सर ऐसा महसूस किया जाता है कि महिलाएं कुछ विशिष्ट कार्यों में ही भागीदारी कर सकती हैं। संगठन के संदर्भ में उनकी भूमिका पुरुषों जैसी नहीं हो सकती। उनमें उत्साह की कमी की भी बात की जाती है। लेकिन जब तक हम अपनी इस पूर्व धारणा से मुक्त होकर महिलाओं का उत्साहवर्द्धन नहीं करेंगे, हम उन्हें दोषी

नहीं ठहरा सकते। भूमि से संबंधित मुद्दों पर महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका में निरंतरता लाने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उन्हें स्थायी रूप से निर्धनों के संगठनों में जोड़ने का अतिरिक्त प्रयास किया जाए।

महिलाओं से सम्बन्धित मुद्दों पर समूह को संवेदनशील बनाने के लिए निरन्तर प्रयास की आवश्यकता है जिससे कि संगठन में महिलाओं की सहभागिता मात्र युक्ति न रहकर स्थायी कार्यप्रणाली के रूप में आगे बढ़े।

अहिंसक अथवा आत्मसंयमी कार्यप्रणाली

भूमि से सम्बन्धित मुद्दों पर कार्य करते हुए जिस प्रकार की शक्तियों के विरूद्ध कार्य करना होता है, उन्हें देखते हुए यह आवश्यक समझा गया कि कार्यप्रणाली के रूप में अहिंसक एवं आत्मसंयमी कार्यप्रणाली का चुनाव किया जाए।

संघर्षों के इतिहास में जाकर देखने से पता चलता है कि संघर्ष को तोड़ने का जो सबसे आसान तरीका अपनाया जाता रहा है वह यह है कि संघर्ष को हिंसक बना दिया जाय। संघर्ष में लगे जनसमूह को बार–बार उकसा कर, भड़का कर इस प्रकार उग्र बनाने का प्रयास किया जाता है कि मुद्दा तो पीछे रह जाय और हिंसा का आरोप लगा कर संघर्ष को भटका दिया जाय। इसलिए आवश्यक है कि हिंसा का रास्ता न अपनाया जाय। ऐसा पथ चुनने पर स्थिति हमेशा निर्धनों के नियंत्रण से बाहर हो जाती है, क्योंकि कानून एवं व्यवस्था तंत्र सदैव निहित स्वार्थों के पक्ष में कार्य करता है। अनुभवों से यह स्पष्ट हो गया है कि हिंसात्मक रास्ता चुनने के परिणामस्वरूप निरन्तर उत्पीड़न ही हाथ लगता है तथा बहुधा इससे लोगों की हिम्मत टूट जाती है।

साथ ही यह भी महसूस किया गया कि कोई भी संगठन कायर रहकर बिना अपने सदस्यों की सुरक्षा एवं उनको आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करने की क्षमता के शक्तिशाली नहीं बन सकता। इस पृष्ठभूमि में आत्मसंयमी प्रणाली के प्रश्न पर निम्नलिखित नतीजे निकाले जा सकते हैं:

(1) आत्मसंयम अथवा अहिंसा का यह अर्थ नहीं है कि लोग अपनी सुरक्षा के लिए तैयार न रहें।

(2) संघर्ष के दौरान हर तरह के भड़काने के बावजूद संगठन को हिंसा पर नहीं उतरना चाहिए जिससे निहित स्वार्थो को स्वयं हिंसा का अवसर न मिल सके।

(3) हर प्रकार के कानूनी एवं निवेदनात्मक रास्ते अपनाने के बाद भी यदि समस्या का हल न निकल पाए तब ही आत्मरक्षा का रास्ता अपनाया जाए।

(4) आत्मसंयमी एवं अहिंसक कार्यप्रणाली का महत्व लोगों को समझाया जाए तथा सीखने–सिखाने की प्रक्रिया द्वारा संगठन के अंदर से आवश्यक झगड़ालू प्रवृत्ति को समाप्त किया जाए।

यद्यपि हमारा राजनैतिक ढांचा अभी भी लोकतांत्रिक संसदीय प्रणाली पर आधारित है लेकिन हाल में चली प्रक्रियाओं से ऐसे संकेत मिल रहे हैं कि हमारी राजनैतिक व्यवस्था और जनजीवन में रची–बसी लोकतांत्रिक सोच को निशाना बनाया जा रहा है। पिछले कुछ दशकों से हम देखते आए थे कि कुछ राजनैतिक व्यवस्था के स्वरूप के चलते और कुछ जनमानस के दबाव के चलते शासक वर्ग लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आघात नहीं कर रहा है। इसका परिणाम ये था कि जन संघर्षो के सूत्रपात और उनको विस्तार देने का काम आज की तुलना में आसान था लेकिन परिस्थितियां बहुत कुछ बदल चुकी हैं। आज की राजनैतिक व्यवस्था को संचालित करने वाला शासक वर्ग लोकतंत्र में विश्वास नहीं रखता। नतीजे के तौर पर संगठन और संघर्ष की प्रक्रिया आने वाले दिनों में बेहद मुश्किल होने वाली है। दूसरी तरफ यह भी सच है कि जब–जब परिस्थितियां कठिन हुई हैं तब–तब संघर्ष की धार तेज हुई है।

लेकिन ऐसी परिस्थितियों में संघर्ष केवल अपने बलबूते पर चलाना बुद्धिमानी का काम नहीं है। बिखरी हुई ताकतों को दबा देंना शासक वर्ग के लिए आसान होता है, इसलिए समान समझ वाले तथा सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों, संगठनों और मंचों के साथ सम्बन्ध का विस्तार करना आवश्यक होता है। क्योंकि इनके द्वारा छोटी

समस्याओं को भी बड़े पैमाने पर फैलाने में सहायता मिलती है। परिणामस्वरूप इस प्रकार के सम्बन्धों एवं उन व्यक्तियों एवम् संगठनों की सद्भावना से जनसंघर्ष को शक्ति मिलती है। इसके द्वारा सीमित किन्तु निश्चित रूप से दमन के विरूद्ध सुरक्षा भी मिलती है।

इस प्रकार के सम्बन्ध मज़दूरों, किसानों, छात्रों, शिक्षकों, पत्रकारों के जनसंगठनों एवं आस–पास के क्षेत्र की अन्य गैर–सरकारी संस्थाओं के साथ बनाए जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर समान मुद्दों पर कार्यरत नेटवर्किंग एवं सहायक संगठनों के साथ भी सम्बन्ध बनाए जाने चाहिए। साथ ही (सिविल लिबर्टी) एवं लोकतांत्रिक अधिकार संगठनों, सरकारी कर्मचारी संगठनों तथा अधिवक्ता संगठनों के साथ सम्बन्ध काफी लाभप्रद हो सकते हैं।

संघर्ष के पक्ष में प्रचार

चर्चा के दौरान यह भी कहा गया कि कार्यकर्ता विभिन्न कारणों जैसे आदर्शवादी या व्यक्तिवादी कहे जाने के डर से किसी भी प्रकार के प्रचार से कतराते हैं। इन परिस्थितियों में व्यक्तिगत प्रचार तथा किसी मुद्दे या संघर्ष पर प्रचार के बीच अंतर करना आवश्यक है। किसी मुद्दे या समस्या के लिए प्रचार स्वयं के लाभ के लिए किए जाने वाले प्रचार से पूर्णतः भिन्न है। आज के सामाजिक–आर्थिक परिवेश में, जबकि जनमत अभी भी थोड़ा बहुत महत्व रखता है, इन मुद्दों का प्रचार करके संघर्ष को जितना व्यापक हो सके उतना व्यापक बनाना आवश्यक हो जाता है। इससे सहानुभूतिपूर्ण जनमत तैयार करने में सहायता मिलती है। अतः कार्यकर्ताओं को किसी मुद्दे या संघर्ष के लिए प्रचार करने में कोई हिचकिचाहट या शर्म नहीं आनी चाहिए लेकिन ऐसा न हो कि मुद्दे या संघर्ष के लिए प्रचार के बहाने व्यक्तिगत स्वार्थों को साधा जाने लगे।

कुछ सहभागियों ने किसी मुद्दे या संघर्ष के लिए आवश्यक समय एवं साधन की सीमाओं की ओर भी ध्यान आकर्षित किया। कार्यशाला में अधिकतर लोगों का विचार था कि मुद्दों एवं संघर्षों के पक्ष में प्रचार आवश्यक है एवं यह प्रचार अन्य संगठनों एवं व्यक्तियों जिनके साथ

सम्पर्क बन चुका है और जिनके साथ हमारे विचार मिलते हैं, के साथ मिलकर किया जाना चाहिए।

कानून का इस्तेमाल

भूमि सम्बन्धी मुद्दों पर संघर्ष के दौरान अधिकांश परिस्थितियों में कार्यकर्ताओं को या तो कानून को तोड़ना होता है अथवा चाहे–अनचाहे कानून की मदद लेनी होती है। इसलिए भूमि सम्बन्धी मुद्दों पर कानून के इस्तेमाल से सम्बन्धित एक समझ तैयार करने की आवश्यकता हमेशा बनी रहती है। इसमें संदेह नहीं है कि प्रचलित कानून एवं पूरा वैधानिक ढाँचा अपनी अंतिम परिणति के रूप में निर्धनों एवं दलित वर्गों की सहायता नहीं कर सकता। निर्धनों एवं अन्य दलित वर्गों के संघर्षों के दौरान ये कानून थोड़ा–बहुत राहत दे सकते हैं, समस्या निवारण नहीं कर सकते। इस सम्बन्ध में लगभग सभी के पास किसी न किसी रूप में अपने अनुभव हैं।

इस सन्दर्भ में जनहित याचिका (पी. आई. एल.) एवं कानूनी सहायता का आलोचनात्मक विश्लेषण भी आवश्यक है। दलित वर्गों की भूमि सम्बन्धित मुद्दों पर सीमाओं के संदर्भ में मुद्दों पर आवश्यकता से अधिक जोर देने से जनता एवं कार्यकर्त्ताओं में भ्रमित जागरूकता पैदा हो सकती है। ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं जहां न्यायालयों

ने राज्य सरकारों पर विभिन्न प्रतिबन्ध इंगित किये जोकि कभी संकलित नहीं किए गए। सहभागियों का विचार था कि कुछ सामाजिक कार्य समूह भी इस जाल में फँसी हैं एवं हमारी न्याय व्यवस्था के उदार तथा हमारे हितैषी होने की भ्रमित समझ का प्रचार कर रहे हैं।

अनुभव दर्शाते हैं कि बुनियादी सामाजिक परिवर्तन कानून द्वारा नहीं लाया जा सकता। इन सीमाओं को स्वीकारते हुए इन कानूनों का तभी इस्तेमाल किया जाना चाहिए जब परिस्थितियों की माँग हो। कार्यकर्ताओं और जनसंगठनों को कानून पर अत्याधिक आश्रित होने से बचना चाहिए, क्योंकि यह आन्दोलन एवं संघर्ष को कमज़ोर बना सकता है। दरअसल कानून का इस्तेमाल खास परिस्थितियों में ही भूमि सम्बन्धी मुद्दों का हल करने के संगठित प्रयास को मज़बूत करने एवं आगे के लिए युक्ति के रूप में होना चाहिए। स्थायी नीति के रूप में कानून पर निर्भर नहीं होना चाहिए।

लेकिन इसके बावजूद भूमि सम्बन्धी कानूनों के बुनियादी पहलुओं को जानना और समझना जरूरी है। यह जानकारी कानून के इस्तेमाल से बचने के लिए भी आवश्यक है । भूमि सम्बन्धी मुद्दों को हल करने के निर्धनों के बीच कार्यरत कार्यकर्ताओं एवं दलित वर्गों के संगठित प्रयासों के लिए आवश्यक है कि वे कानूनी बारीकियों से अवगत हों एवं जनता को कानून के कमज़ोर पक्षों के प्रति सजग एवं शिक्षित करने की स्थिति में हों। कार्यकर्ताओं को कानून सम्बन्धी शिक्षा देने के साथ ही जनता को उनके अधिकारों, जिनमें भूमि सम्बन्धी अधिकार भी शामिल हैं, के बारे में भी शिक्षित किया जाए।

इस सन्दर्भ में वकील कार्यकर्ताओं की भी बड़ी अहम् भूमिका है। वे कार्यकर्ता जिनके पास कानून की डिग्री है और जो जनसंगठनों की सहायता करने के उद्‌देश्य से वकालत कर रहे हैं, काफी लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। यह भी आवश्यक है कि सहानुभूति रखने वाले वकीलों का साथ लिया जाए तथा उनके बीच आपसी सम्पर्क कायम करवाया जाए जिससे कार्यकर्ताओं एवं जनता की कानूनी शिक्षा के लिए सामग्री आसानी से प्राप्त की जा सके।

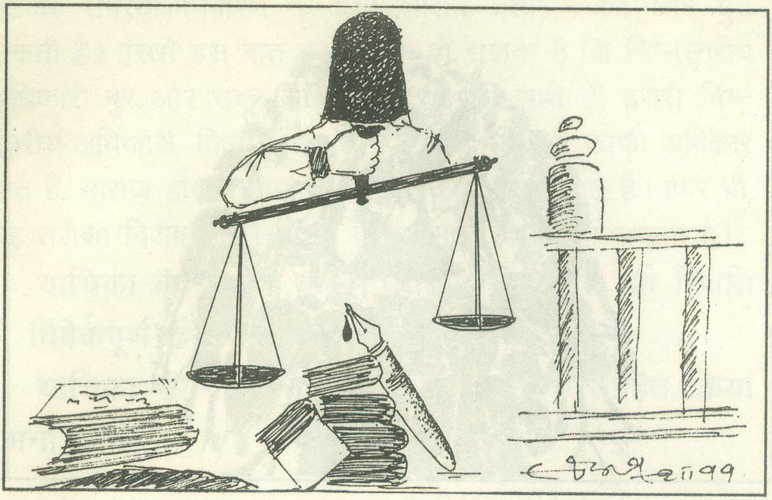

छोटे लेकिन महत्वपूर्ण मुद्दे

संगठित करने के तरीकों में ही कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो विशेषकर भूमि संम्बधित संघर्षों से जुड़े हुए हैं। आम तौर पर भूमि सम्बन्धी मुद्दों से काफी नियम व कानूनी पहलू जुड़े होते हैं जोकि ग्रामीण स्तर से लेकर राज्य स्तर तक फैले हैं। भारत में हर जगह ग्रामीण स्तर से लेकर तमाम उच्च स्तरों तक भूमि राजस्व विभाग की भिन्न संरचना है, परन्तु एक स्थान पर पहुँच कर भूमि रिकार्ड एवं राजस्व से सम्बद्ध अधिकार प्रशासनिक पदाधिकारियों के हाथों में संचित हो जाते हैं। दूसरी ओर भूमि से सम्बन्धित झगड़े भारतीय दण्ड विधान एवं अपराध दण्ड विधान द्वारा सुलझाये जाते हैं। कुछ झगड़े राजस्व बोर्ड एवं चकबंदी अधिकारियों द्वारा सुलझाये जाते हैं।

इस प्रकार यह पूरी प्रणाली काफी उलझी हुई तथा बाधापूर्ण है। एक बार यदि झगड़े इनके पास पहुंच गए (विशेषकर यदि गलत स्थान पर) तो इनके हल में काफी लम्बा समय लग जाता है।

इसलिए भूमि सम्बन्धी मुद्दों पर संघर्ष के सफल संचालन के लिए इनसे सम्बद्ध कानून प्रणालियों एवं उच्चता क्रम को सावधानी से समझना तथा सतर्कता बरतना अत्यन्त आवश्यक है। यह और इस

तरह के काफी मुद्दे हैं जो देखने में तो बहुत अहम् नहीं लगते लेकिन उनके परिणाम दूरगामी होते हैं। उदाहरण के लिए:

(अ) निम्नस्तरीय अधिकारियों के विरूद्ध उच्च अधिकारियों के पास याचिका देना।

(ब) यदि "प्रसन्न करके" काम हो सके तो वह भी करना चाहिए।

(स) असफलता का पूर्वानुमान लगाना एवं उनसे सीख लेना।

(द) संगठित करने में अध्ययन एवं जानकारी एकत्र करने का महत्व।

(अ) निम्नस्तरीय अधिकारियों के विरूद्ध उच्च अधिकारियों के पास याचिका

निम्नस्तरीय अधिकारियों के विरूद्ध उच्च अधिकारियों के पास याचिका देने के सम्बन्ध में संगठनों के अंदर विभिन्न प्रकार की आशंकाएं व्याप्त रहती हैं।

इनमें सबसे अधिक सामान्य आशंका यह होती है कि कहीं संगठन के अंदर याचिका की परम्परा न कायम हो जाए। आवश्यकता से अधिक याचिकाएं जनता की अपेक्षाओं को काफी हद तक बढ़ा सकती हैं तथा आत्मनिर्भरता के लिए संघर्ष की दिशा प्रत्यक्ष संघर्ष से

हटकर समस्या निवारण के लिए शासन–प्रशासन की ओर मुड़ सकती है। इससे इस बात का भी भ्रम हो सकता है कि निम्नस्तरीय अधिकारी बुरे और उच्च अधिकारी अच्छे हैं। साथ ही इससे निम्न स्तरीय अधिकारी, जिनके पास भूमि रिकार्ड सम्बन्धी काफी अधिकार होते हैं, नाराज़ होकर संघर्ष के विरूद्ध कार्य कर सकते हैं। फिर भी, यह तरीका विशेष परिस्थितियों में इस्तेमाल किया जा सकता है।

याचिका का प्रयोग केवल जायज़ शिकायत की स्थिति में विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए।

याचिका परम्परा को हर कीमत पर निरुत्साहित किया जाना चाहिए।

(ब) यदि ''प्रसन्न करके'' काम हो सके तो वह भी करना चाहिए

हमारे समाज के प्रशासकीय तंत्र के चरित्र को देखते हुए भूमि सम्बन्धी मुद्दों में, जिसमें जोखिम काफी है एवं निहित स्वार्थों का प्रभाव अधिक है, संगठन अक्सर स्वयं को ऐसी स्थिति में पाते हैं जहां अधिकारियों को ''प्रसन्न करने'' से जनसंघर्ष में उनकी सहायता मिल सकती है।

ऐसी स्थिति में कार्यकर्ताओं के समक्ष नैतिकता की दुविधा उत्पन्न हो जाती है। एक तरफ कार्यकर्ताओं के सामने संगठन एवं संघर्ष उद्देश्य होते हैं तो दूसरी ओर भ्रष्टाचार के विरूद्ध नैतिकता की भावना तथा भ्रष्ट अधिकारियों का खुला रूप। भूमि पर जन अधिकारों के मुद्दों पर संघर्ष के दौरान ऐसी परिस्थितियां अक्सर उभरती हैं।

ऐसे तरीकों का इस्तेमाल सैद्धान्तिक रूप में बंद होना चाहिए। यह स्पष्ट रहना चाहिए कि व्यापक उद्देश्यों के लिए बाधाओं को उखाड़ फेंकने अथवा काम पूरा करने (कोई सरकारी दस्तावेज़ अथवा दुर्लभ रिकार्ड प्राप्त करने इत्यादि) में अधिकारियों का उपयोग बड़ी ही सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। कार्यकर्ताओं को इस प्रक्रिया में उत्तेजित नहीं होना चाहिए, साथ ही संगठन के सदस्यों को इस

सम्बन्ध में शिक्षित किया जाना चाहिए।

प्रशासनिक अधिकारियों के साथ रोज़मर्रा के कार्यों की प्रक्रिया के दौरान उनके साथ स्थायी एवं मानवीय सम्बन्ध स्थापित किए जाने की आवश्यकता भी होती है। कभी-कभी प्रशासनिक अधिकारियों को "वर्ग-शत्रु" समझ लिया जाता है जिसके फलस्वरूप कार्यकर्ता उनके साथ रूखा व्यवहार करने लगते हैं तथा लोगों के बीच उनका मज़ाक उड़ाने लगते हैं। इस किस्म का व्यवहार निरुत्साहित किया जाना चाहिए तथा स्थानीय प्रशासनिक अधिकारियों के साथ उसी प्रकार का सामान्य मानवीय व्यवहार अपनाया जाना चाहिए जैसा कि आम जनता के साथ रखा जाता है अन्यथा सीधे टकराव के कारण काम में अड़चन आती है।

सैद्धान्तिक रूप में इसका प्रयोग नहीं होना चाहिए। इसका प्रयोग **किसी विस्तृत लक्ष्य की प्राप्ति में आने वाली अड़चनों को दूर करने के लिए किया जा सकता है।**

(स) असफलता का पूर्वानुमान लगाना एवं उससे सीख लेना

भूमि सत्ता का मुख्य स्रोत होने के कारण, इससे सम्बन्धित मुद्दों पर होने वाले संघर्ष, स्वरूप में राजनैतिक एवं लम्बे अरसे तक चलने वाले होते हैं। फलस्वरूप इन संघर्षों में सफलता पाना अत्यन्त कठिन होता है तथा सफलता प्राप्त होने पर उपलब्धियों को सुरक्षित रखना उतना ही कठिन साबित होता है। अतः भूमि सम्बन्धी मुद्दों पर जनता को संगठित करना काफी उतार-चढ़ाव से पूर्ण एक नीरस प्रक्रिया है। लम्बे संघर्ष के दौरान प्रत्येक कार्यवाही से अपेक्षित परिणाम नहीं निकल पाता। इसीलिए ऐसी परिस्थितियों में कार्यकर्ताओं के समक्ष संगठन का हौसला बनाए रखने का प्रश्न निरन्तर बना रहता है।

कार्यक्रम बनाते समय सम्भावित खतरे एवं प्रत्येक कार्यवाही के परिणामों पर विचार-विमर्श अपने आप में भविष्य में सम्भावित निराशा के विरूद्ध सुरक्षा का साधन है।

किसी कार्यवाही की असफलता एवं उससे उत्पन्न होने वाली

निराशा की परिस्थिति में असफलता, उसके कारणों एवं जनमानस पर उसके प्रभावों का विश्लेषण अत्यावश्यक है। इससे अन्तर्दृष्टि विकसित करने तथा भावी योजनाएं तैयार करने में सहायता मिलती है।

असफलताओं से उत्पन्न होने वाली निराशा पर काबू पाने एवं संगठन में पुनः शक्ति संचार करने के तरीके ढूंढे जाने चाहिए। असफलताओं के विश्लेषण के अतिरिक्त इन परिस्थितियों में संघर्ष के आधार का विस्तार करना तथा उसे अगले चरण में ले जाना भी लाभप्रद हो सकता है।

आवश्यक है :

आने वाले असफलताओं का पूर्वानुमान एवं लोगों के साथ उन पर चर्चा।

असफलताओं की लोगों के साथ चर्चा।

(द) संगठित करने में अध्ययन एवं जानकारी एकत्र करने का महत्व

आज के सामाजिक–राजनैतिक स्थिति एवं भूमि सम्बन्धी मुद्दों के विशिष्ट सन्दर्भ में अध्ययन का काफी महत्व है। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं वैधानिक प्रारूपों एवं उनके अन्तःसम्बन्धों के जनता पर प्रभावों से सम्बन्धित समझ के लिए अध्ययन की सतत प्रक्रिया की आवश्यकता पर बल दिया जाना चाहिए। भूमि सम्बन्धी रिकार्डो तथा कानूनों, कानूनों के उद्देश्यों एवं कमज़ोरियों के प्रति समझ उत्पन्न करना भी लाभदायक है।

एक अन्य सार्थक पक्ष, जिसकी ओर ध्यान रखना चाहिए, वह है संघर्ष को मज़बूत आधार प्रदान करने के लिए संघर्ष के मुद्दों से सम्बन्धित जानकारी एकत्र करना। इसके अतिरिक्त, स्थानीय संघर्षो के इतिहास, स्थानीय संघर्षो के तुलनात्मक अध्ययन एवं अन्य स्थानों पर उभरने वाले मुद्दों के प्रलेखन के महत्व को भी समझना चाहिए, जिससे पिछले अनुभवों एवं अन्य स्थानों पर हुए अनुभवों से अन्तर्दृष्टि एवं बल प्राप्त किया जा सके।

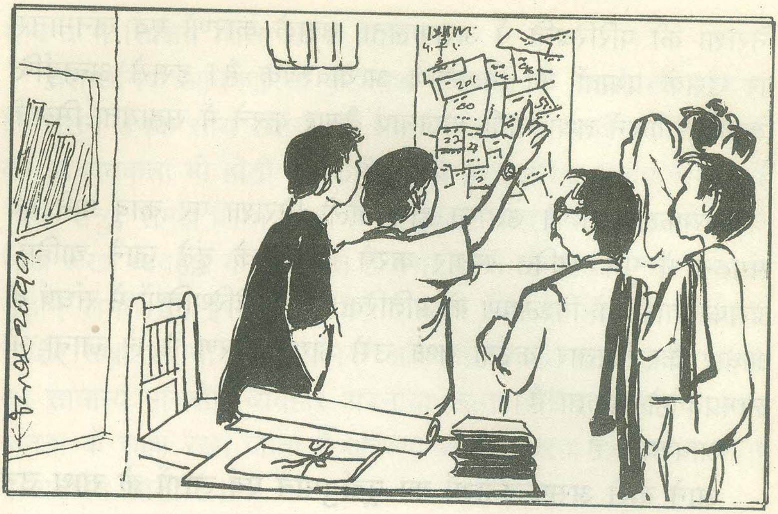

इस किस्म की प्रक्रिया समान रुचि एवं संघर्षो से सहानुभूति रखने वाले विशेषज्ञों की सहायता से शुरू की जा सकती है एवं प्रलेखन, जानकारी एकत्रण तथा लोगों के साथ विश्लेषण का क्रियान्वयन किया जा सकता है। लेकिन ध्यान रहे कि समान रुचि एवं सहानुभूति रखने वाले विशेषज्ञों की भूमिका कार्यकर्ताओं को आवश्यक दक्षता के प्रशिक्षण तक ही सीमित रहनी चाहिए। इसके द्वारा जनता एवं उनके संगठनों के लिए अनुपयुक्त ज्ञान के प्रयोग की प्रक्रिया पर नियन्त्रण लग सकेगा। साथ ही, भविष्य में इस प्रक्रिया को जारी रखने के लिए संगठन के अंदर ही दक्षता का विकास हो सकेगा।

ईश्वर सोच रहा था अंततः
आदमी अच्छा और मज़बूत दोनों है
पर अच्छा और मज़बूत -
अभी भी दो अलग-अलग आदमी है

विस्वावां शिबोर्स्का

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर
उन सह–चिंतक सक्रिय जनों का वक्तव्य है जो
"अच्छे" इंसानों को "मज़बूत" बनाने का
साझा सपना देखते हैं।

इस दिशा में बढ़ने के लिए हमारा मिशन है
समाज में सवालिया संस्कृति को
सजीव और सक्रिय रखना।

मात्र यही एक धरोहर है जो
अच्छे इंसान के मज़बूत इंसान में तब्दील होने
की संभावनाएं उजागर कर सकती है।

इस मुहिम में योगदान की सार्वाधिक संभावनाएं
सामाजिक, राजनैतिक प्रक्रिया से सम्बद्ध
बेचैन कार्यकर्ताओं
में ही निहित हैं।

लेखकः अनिल चौंधरी
प्रकाशकः पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेन्टर
F - 93, कटवारिया सराय - 110 016
नई दिल्ली
© सर्वसाधारण के नाम, 1999
रूपांकन एवं मुद्रणः अमन ग्राफिक्स, नई दिल्ली फोनः 6968121